चुनाव आयोग विवाद पर विशेष

वर्तमान में चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया चुनाव आयोगों की नियुक्ति को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करती है इसलिए यह आवश्यक है कि चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया को अराजनीतिक स्वरूप प्रदान किया जाए। इसके लिए चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति का दायित्व उस समिति को सौंपा जाना चाहिए, जिसके सदस्य भारत में प्रधानमंत्री, विपक्षी दल के नेता, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व मुख्य चुनाव आयुक्त हो। साथ ही नियुक्ति से पूर्व इस समिति द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ऐसे किसी व्यक्ति के नाम की अनुशंसा ना की जाए जिसका कि पुराना रिकार्ड विवादास्पद रहा है।

वर्तमान में मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य चुनाव आयुक्तों की बर्खास्तगी के लिए अलग-अलग प्रक्रिया को अपनाया गया है जहां मुख्य चुनाव आयुक्त को न्यायधीशों की बर्खास्तगी के विहित रीति से अनेक पद से हटाया जाता है वहीं अन्य चुनाव आयुक्तों को मुख्य चुनाव आयुक्त ही बनाया जाय। नवीन चावला प्रकरण ने इस प्रक्रिया की जटिलता व अंतर्विरोधों को उद्घाटित किया है। इसलिए यह आवश्यक है कि द्वैध का अंत करते हुए अन्य चुनाव आयुक्त की बर्खास्तगी हेतु उसी प्रक्रिया को अपनाए जाए जिस प्रक्रिया के तहत मुख्य चुनाव आयुक्त को उनके पद से हटाया जाता है।

चुनाव आयोग की स्वतंत्रता व निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि चुनाव आयोग से संबंधित व्यय को संचित निधि पर भारित घोषित किया जाए।

वर्तमान में स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव के संचालन हेतु चुनाव आयोग को दी गई शक्तियाँ पर्याप्त नहीं है। इसके लिए चुनाव आयोग को या तो केन्द्र सरकार के पहल का इंतजार करना पड़ता है या फिर इससे पूर्व केन्द्र सरकार को विश्वास में लेना पड़ता है कई बार केन्द्र सरकार के असहयोगी रवैये के कारण चुनाव आयोग चाहकर भी पहल नहीं कर सकती इसीलिए यह आवश्यक है कि इन संदर्भों में निर्णय लेने की छूट चुनाव आयोग को दी जाए।

चुनाव आयोग द्वारा एक्जिट पोल व ओपिनियन पोल पर लागू प्रतिबंध

ओपनियिन पोल: यह चुनाव पूर्व आयोजित वे सर्वेक्षण है, जिसके जरिए मतदाताओं के रूझान को जानने का प्रयास किया जाता है और यह अनुमान लगाया जाता कि आसन्न चुनाव में किसी राजनीतिक दल की चुनावी संभावनाएं क्या है।

एक्जिट पोल: यह चुनाव पश्चात् कराए जाने वाले वे सर्वेक्षण हैं जिसके जरिए मतदाताओं के रूझानों के आधार पर सम्पन्न चुनाव में राजनीतिक दलो की संभावनाओं का पता लगाया जाता है।

चुनाव आयोग ने 15 वीं लोकसभा चुनाव के ठीक पूर्व फरवरी 2009 में चुनाव पूर्व सर्वेक्षण व चुनाव पश्चात् सर्वेक्षण के परिणामों के प्रकाशन पर दिशा निर्देश जारी करते हुए यह कहा कि यदि कई चरणों में मतदान करवाया जाना है तो वैसी स्थिति में प्रथम चरण के मतदान की समाप्ति के 48 घण्टे पहले से लेकर अंतिम चरण के मतदान की समाप्ति तक ओपिनयन पोल व एक्जिट पोल सर्वेक्षण के परिणाम प्रकाशित नहीं किए जा सकते। यदि मतदान एक ही चरण में सम्पन्न होना है तो वैसी स्थिति में मतदान समाप्ति के 48 घण्टे पूर्व से मतदान समाप्ति तक ऐसे सर्वेक्षणों के परिणाम प्रकाशित नहीं किए जा सकते।

यद्यपि ऐसा ही दिशा निर्देश चुनाव आयोग के द्वारा 1998 में जारी किया गया था लेकिन 1999 में सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा चुनाव आयोग की प्रतिबंध लगाने की इस शक्ति पर मौखिक रूप से आपत्ति व्यक्त की गई। इस आपत्ति के पश्चात् चुनाव आयोग ने सितम्बर 1999 में अपने दिशा-निर्देशों को वापस ले लिया। आगे चलकर एक्जिट पोल पर प्रतिबंध से संबंधित याचिका पर सुनवायी के दौरान सर्वोच्च न्यायायल का यह रूख उभर कर सामने आया कि चुनाव आयोग स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव के मद्देनजर ऐसे चुनावों के नियमन के लिए दिशा निर्देश जारी किया। सर्वोच्च न्यायालय की इसी टिप्पणी के आलोक में चुनाव आयोग के द्वारा हाल में एक बार फिर से पहल की है।

प्रतिबंध का आधार:

1. सर्वोच्च न्यायालय ने स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन को संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा माना है इसका दायित्व चुनाव आयोग पर है। ऐसी स्थिति में चुनाव आयोग को ऐसी शक्तियाँ स्वमेव प्राप्त है, जो स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

2. अधिकांश भारतीय मतदाता अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित है। ऐसी स्थिति में ऐसे सर्वेक्षणों के नतीजे निश्चय ही उनके मतदान आचरण को प्रभावित करते हैं/कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे सर्वेक्षणों की चुनाव परिणामों को विकृत करने में भूमिका हो सकती है, विशेषकर तब जब कई चरणों में चुनाव करवाए जा रहे हैं।

3. अधिकांश राजनीतिक दल भी इन सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध के पक्ष में है और इससे संबंधित प्रस्ताव संसद में भी विचारधीन है।

4. भले ही ऐसे सर्वेक्षण निष्पक्षता का दावा जितना भी करे लेकिन ऐसा देखा गया है कि अक्सर ऐसे सर्वेक्षणों के परिणाम गलत साबित होते हैं। यह भी देखा गया है कि ऐसे सर्वेक्षण छद्म रूप से राजनीतिक दलों के द्वारा प्रायोजित होते है। और उसका उद्देश्य मतदाताओं को अपनी ओर आकर्षित करना होता है।

आलोचना का आधार:

1. ऐसे प्रतिबंधों को प्रेस की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने की कोशिश के रूप में देखा जा रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि यह Art. 19 (1) (90) के तहत प्रदत "वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" को सीमित करता है। इसलिए यह निर्बधंतन अयुक्ति युक्त है क्योंकि इसका उल्लेख Art. 12 (2) में नहीं मिलता जिसके आधार पर वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्ति युक्त निर्बधंन आरोपित किए जा सकते हैं।

2. ना तो संविधान ना ही देश का कोई कानून चुनाव आयोग को ऐसी शक्ति प्रदान करता जिसके बदौलत वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा सके।

3. अब तक ऐसा कोई शोध सामने नहीं आया है जो यह प्रमाणित करे कि ऐसे सर्वेक्षण चुनाव परिणामों को विकृत करते हैं।

4. चुनाव आयोग ने उपरोक्त दिशा-निर्देश जारी करते हुए एटर्नी जनरल की उस सलाह की अनदेखी की जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया कि Art. 19 (1) (90) के संबंध में ऐसे निर्बधंन युक्ति युक्त नहीं माने जाएगे।

निष्कर्ष:

यदि उपरोक्त आपतियों के संदर्भ में चुनाव आयोग द्वारा जारी दिशा-निर्देश के औचित्य पर विचार करे तो हम यह कह कसते हैं कि अगर ऐसे सर्वेक्षणों के परिणाम मतदाताओं के छोटे से समूह को ही प्रत्यक्षत: या परोक्षत: प्रभावित करते है तो चुनाव परिणामों पर इसका व्यापक असर पड़ता है। इसलिए वर्तमान परिदृश्य में इस दिशा निर्देश को उचित माना जा सकता है। भविष्य के संदर्भ में यदि ऐसे सर्वेक्षणों के संदर्भ में मैनीपूलेशन को रोकने हेतु एक निगरानी तंत्र

विकसित किया जाता है, जो सर्वेक्षण कराने वाली एजेंसी सर्वेक्षण की प्रक्रिया, सैम्पल के आकार और अन्य पहलूओं के संदर्भ में ना केवल मार्गदर्शक सिद्धांत का प्रतिपादन करे वरन् उन सर्वेक्षणों पर निगरानी भी रख सके तो उपरोक्त आपत्तियों के मद्देनजर उपरोक्त प्रतिबंधों को समाप्त किया जा सकता है।

Negative Voting का अधिकार

पिछले कुछ समय से भारतीय मतदाताओं को नकारात्मक मत देने का अधिकार प्रदान करने की मांग निरंतर जोर पकड़ रही है। 2001 में निर्वाचन आयोग ने भी केन्द्र सरकार को यह अनुशंसा की थी कि भारतीय मतदाताओं को नकारात्मक मत देने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए ताकि अयोग्य उम्मीदवारों को न चुनने का अधिकार प्राप्त हो सके। लेकिन केन्द्र सरकार ने इस संदर्भ में कोई पहल नहीं की। निर्वाचन आयोग के इसी अनुशंसा के आलोक में Peoples Unions for Civil Liberties ने सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। इस याचिका में सर्वोच्च न्यायालय से यह अपेक्षा की गई कि वह चुनाव आयोग को इस संदर्भ में निर्देश जारी करे। ताकि Electronic Voting Machine में किसी विशेष उम्मीदवार या फिर सभी उम्मीदवारों के विरुद्ध Negative Voting का विकल्प उपलब्ध कराया जा सके। इस याचिका का उद्देश्य भ्रष्ट व आपराधिक छवि वाले उम्मीदवारों को सांसद या विधायक बनने से रोकना था।

नकारात्मक मत के संदर्भ में:

वर्तमान स्थिति:

जब तक चुनाव के लिए परम्परागत मतदान पत्रों का इस्तेमाल किया जाता था तब तक मतदाताओं को यह विकल्प था कि वे अपने मतदान पत्र को किसी उम्मीदवार के पक्ष में चिन्हित किए बिना बैलेट बॉक्स में डालकर अपनी भावनाओं का प्रकट कर सकते थे, लेकिन इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में यह विकल्प भी नहीं रह गया। वर्तमान में चुनाव व्यवहार नियम 1961 की धारा 49 (0) के तहत मतदाताओं के समझ यह विकल्प है कि अगर वह किसी उम्मीदवार को योग्य नहीं समझता तो इस संदर्भ में वह मतदान अधिकारी को इसकी सूचना दे सकता है।

मतदान अधिकारी उसे एक रजिस्टर उपलब्ध करवाएगा, जिसमें वह वोट ना देने का कारण बतला सकता है और फिर पीठासीन अधिकार वोटर रजिस्टर फार्म 17 (ए) में उस मतदाता का नाम दर्ज करेगा लेकिन इस प्रावधान की जानकारी ना तो मतदान अधिकारी के पास उपलब्ध होती है और न ही मतदाताओं को।

याचिका का आधार:

1. चुनाव आयोग द्वारा 2001 में Right of Negative Voting के संदर्भ में केन्द्र सरकार को दी गई सलाह।
2. मतदान के अधिकार में Negative Voting का अधिकार शामिल है। इसके पीछे तर्क यह है कि जब चुप रहने का अधिकार वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में शामिल हो सकता है तो नकारात्मक मत देने का अधिकार मत देने के अधिकार में क्यों नहीं।
3. नकारात्मक मत के अधिकार का संबंध स्वस्थ्य आलोचना के अधिकार से जुड़ता है।
4. धारा 49 (0) के तहत अगर मतदाता चाहे तो वह किसी उम्मीदवार को मत देने से इन्कार कर सकता है। लेकिन इस संदर्भ में प्रावधान गुप्त मतदान के अधिकार का उल्लंघन करती है।
5. अक्सर कम मतदान के % को मतदाताओं की उदासीनता से जोड़कर देखा जाता है जबकि यह एक प्रकार का Negative Voting भी है। कारण यह कि उम्मीदवारों की भ्रष्ट छवि, आपराधिक पृष्ठभूमि और अयोग्यता कहीं ना कहीं मतदाताओं में उदासीनता को जन्म देती है। जिसके कारण मतदाता मतदान प्रक्रिया से विरक्त रहते हैं।

केन्द्र सरकार का रूख:

PUCL की इस याचिका के मद्देनजर जब सर्वोच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में केन्द्र सरकार के रूख को जानने की कोशिश करते हुए यह प्रश्न किया कि क्या वोट ना डालने/वोटिंग से दूर रहने का अधिकार वोट डालने के अधिकार में शामिल है। केन्द्र सरकार ने इस प्रश्न के जवाब में यह स्पष्ट किया कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत मतदाताओं को नकारात्मक मतदान का विकल्प नहीं प्रदान करता। मतदान का अधिकार महज सांविधिक Statuary अधिकार है ना कि मताधिकार या संवैधानिक अधिकार। इसलिए मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल नकारात्मक वोट डालने के अधिकार की गारण्टी नही हो सकती। इस याचिका के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के दो सदस्यीय बैंच ने इस मामले को भारत के मुख्य न्यायाधीश के नेतृत्व वाले बड़े बैंच को सौंपा और उनसे यह अपेक्षा की गई की वे इस प्रश्न पर विचार करे कि चुनाव आयोग की शक्ति का विस्तार कहाँ पर है और क्या ऐसे कानूनी प्रावधान के लिए अधिकारिक पहल की जरूरत है।

विश्लेषण:

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में अगर Negative voting के अधिकार के प्रश्न पर विचार किया जाए तो हम यह कह सकते हैं कि पिछले दो दशक के दौरान राजनीतिक भ्रष्टाचार और राजनीति के अपराधीकरण की समस्या जितनी गंभीर हुई है और इसके कारण संसदीय राजनीति के मूल्यों का जितनी तेजी से पतन हुआ है। हम यह कह सकते हैं कि नकारात्मक मतदान का अधिकार इस संदर्भ में सकारात्मक व सटिक पहल है। इसके कारण उम्मीदवारों के साथ-साथ राजनीतिक दलों पर भी एक दबाव सृजित होगा और अंतत: संसदीय राजनीति के मूल्यों की पुनर्बहाली संभव हो सकेगी। लेकिन इस दिशा में पहल करने के साथ-साथ इस संदर्भ में भी स्पष्ट प्रावधान करने होंगे कि अगर बड़ी संख्या में लोग इस अधिकार का इस्तेमाल करते है तो क्या वैसी स्थिति में नए सिरे से चुनाव करवाया जाएगा।

दूसरी बात यह कि अगर नये सिरे से चुनाव करवाए जाते है तो क्या पिछले चुनाव के उम्मीदवारों की भागीदारी पर रोक लगायी जाएगी। अगर ऐसी रोक लगाई जाती है तो फिर यह रोक कितने समय के लिए प्रभावी होंगे।

प्रतिनिधियों की वापसी का अधिकार (Right to Recall)

हाल ही में दिल्ली में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में तात्कालिक लोकसभाध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने संसदीय राजनीतिक मूल्यों के मद्देनजर यह सुझाव दिया कि भारत के मतदाताओं को भी अपने जनप्रतिनिधि को बुलाने का अधिकार दिया जाए।

सैद्धांतिक आधार:

1. जन प्रतिनिधियों की वापसी का अधिकार नया नही है। प्राचीन काल में यह एथेंस के लोकतंत्र में विद्यमान था और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी यह अमेरिका के कैलिफोर्निया, कनाडा, वेनुजुएला व स्वीट्जरलैण्ड में उपलब्ध है।
2. आज जन प्रतिनिधियों का व्यवहार इस बात का प्रमाण है कि अधिकांश जनप्रतिनिधि ना तो जनता व क्षेत्र के प्रति अपने उतरदायित्वों को लेकर सजग है और ना ही अपने संसदीय उतरदायित्वों के प्रति। इसका प्रमाण कोरम के अभाव में संसदीय कार्यवाही का ना चल पाना, संसद के भीतर नकारात्मक राजनीति के कारण संसदीय कार्यवाही का बाधित होना व संसदीय मूल्यों व गरिमा का पतन है यहाँ तक कि क्षेत्र के विकास के लिए सांसदों को जो निधि

उपलब्ध करायी जाती है अधिकांश सांसद उसके समुचित उपयोग के प्रति संवेदनहीन है।

3. जनता को भ्रष्ट, बेईमान व अकर्मण्य प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार होना चाहिए। इसके जरिए ना केवल जन प्रतिनिधियों की जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व का निर्धारण संभव है वरन् उसे अनुशासित करना भी।

4. पिछले दो दशक के दौरान आर्थिक उदारीकरण ने योग्यता व प्रतिभा के महत्व को बढ़ाया है। कहीं ना कहीं संसदीय प्रणाली में भी योग्यता व प्रतिभा के साथ-साथ जरूरत व कुशलता को महत्व मिलना आवश्यक है। इसके मद्देनजर यह आवश्यक हो जाता है कि अकुशल प्रतिनिधियों को वापस बुलाया जा सके। कारण यह कि जनता को अपनी गलती सुधारने का मौका मिलना चाहिए ना कि उसे अगले 5 वर्षों के लिए अपनी गलती की सजा भुगतने के लिए भ्रष्ट, दागी व अकर्मण्य जनप्रतिनिधियों के हवाले कर देना चाहिए।

विश्लेषण:

यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या Right to Recall के संदर्भ में नया क्या है। इस परिप्रेक्ष्य में देखे तो वर्तमान में ग्राम पंचायत के स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार ग्राम सभा को प्राप्त है। दूसरी बात यह कि क्या भारत के मतदाता इतने परिपक्व हो चुके हैं कि इस अधिकार का इस्तेमाल करने में सक्षम हो सके। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि भारतीय मतदाताओं में जागरूकता का अभाव है और इसलिए आज भी धर्म, जाति वर्ण, सम्प्रदाय जैसे भावनात्मक मुद्दों पर मतदाताओं का मतदान आचरणे निर्वाचित करने में अहम् भूमिका निभाता है। इतना ही नहीं मतदाताओं की गरीबी व निरक्षता का फायदा उठाकर अक्सर भ्रष्ट, आपराधिक व दागी छवि वाले उम्मीदवार उन्हें अपने पक्ष में मोड़ने में कामयाब होते है। जिसके कारण ऐसे जनप्रतिनिधियों की संख्या में पिछले तीस दशक के दौरान वृद्धि हुई है। ऐसे जनता से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह जनप्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अपने अधिकार का इस्तेमाल भ्रष्ट, अकर्मण्य व बेइमान जन प्रतिनिधियों को दण्डित करने के लिए करेगी। इसके उलट नकारात्मक राजनीति के बढ़ते जोर की पृष्ठभूमि में इस बात की संभावना ज्यादा है कि जनता के इस अधिकार का दुरुपयोग करते हुए इसका उपयोग ईशान राजनेताओं को परेशान करने के लिए किया जाए। तीसरी बात यह कि लोकसभा के संदर्भ में इस संदर्भ में कुछ व्यवहारिक समस्याएं भी है। कारण यह कि लोकसभा क्षेत्रों के विशाल आकार और जन प्रतिनिधियों से जनता के प्रत्यक्ष जुड़ाव ना हो पाने के कारण उन पर निगरानी मुश्किल है। इसलिए यह ज्यादा उचित प्रतीक होता है कि पहले पंचायती राज संस्थाओं में इसे प्रभावी तरीके से लागू किया जाए और फिर उससे प्राप्त अनुभवों के मद्देनजर अगले कदम पर विचार किया जाए। इससे Right to Recall द्वारा प्रदत्त अधिकारों के सदुपयोग प्रदुपयोग के संदर्भ में जनता को प्रशिक्षित करना भी अपेक्षाकृत आसान हो जाएगा।

चुनावी फंडिंग की समस्या

भारतीय राजनीति पिछले लगभग 4 दशक से राज्य के द्वारा चुनावी खर्च वहन करते की बात रह-रह कर सामने आती रही है। ऐसा माना जा रहा है कि राज्य द्वारा चुनावी राशि की फंडिंग के कारण ना केवल चुनाव प्रक्रिया में काले धन की भूमिका को सीमित करने में मदद मिलेगी वरन् काले धन के प्रयोग ने राजनीतिक भ्रष्टाचार के साथ-साथ राजनीति के अपराधिकरण की संभावनाओं को जो विस्तार दिया है उस पर अंकुश लगाते हुए राजनीतिक व्यवस्था की बुराईयों को दूर करने में भी मदद मिलेगी। इसके अतिरिक्त यदि राज्य के द्वारा चुनावी खर्चे उपलब्ध करवाऐ जाते तो इस सुविधा को राजनीतिक दलो में आंतरिक लोकतंत्र में बहाली से जोड़कर राजनीतिक दलों के आंतरिक लोकतंत्र को भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

चुनावी खर्च की राज्य द्वारा फंडिग की चर्चा 1974 में चुनाव सुधार पर गठित 'तारकुण्डे समिति' की सिफारिशों में मिलता है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया कि राज्य द्वारा चुनावी खर्च को नकद रूप में उपलब्ध करवाये जाने के बजाए सुविधाओं के रूप में उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। इसके मद्देनजर चुनाव प्रचार हेतु एक निश्चित मात्रा तक नि:शुल्क डाक सेवा, चुनाव अभियान के दौरान नि:शुल्क सभा कक्ष और निर्वाचन सूची की नि:शुल्क प्रतियाँ चुनाव में लड़े उम्मीदवारों को उपलब्ध करवाये जाने की अनुशंसा की।

1990 के चुनाव सुधार पर गठित 'दिनेश गोस्वामी समिति' ने यह अनुशंसा की कि राज्य द्वारा चुनावी खर्च का वहन करते हुए चुनाव में लड़े उम्मीदवारों को निश्चित मात्रा में ईंधन और टेलीफोन सेवा उपलब्ध करवाया जाए। लेकिन यह सुविधा केवल मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को उपलब्ध करवायी जाएगी। आगे चलकर जब 1997 में चुनाव सुधारों पर इंद्रजीत गुप्त समिति का गठन किया गया तो इस समिति ने चुनावी प्रक्रिया के लोकतांत्रिक स्वरूप को सुनिश्चित करने के लिए राज्य द्वारा चुनावी खर्च वहन करने की सिफारिश की ताकि उन तमाम राजनीतिक दलों के बीच समान स्तर की 'प्रतिस्पर्धा संभव हो सके जिनके बीच संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से असमानता है। इस समिति ने अपने रिपोर्ट में स्पष्ट किया कि आरम्भ में राज्यों के पास संसाधनो की अपर्याप्तता के मद्देनहर सरकार आंशिक रूप से चुनावी खर्च का वहन करे लेकिन धीरे-धीरे चुनावी खर्चो का पूरी तरह से वहन राज्यों के द्वारा किया जाए। इस संदर्भ में चुनाव आयोग के रूप में भी 1980 के दशक में परिवर्तन देखने को मिलता है। जहाँ 1980 के पूर्व चुनाव आयोग का यह मानना था कि राज्य चुनावी खर्चे का वहन करते हुए राजनीतिक दलो के प्रत्याशियों को नगद सरकारी सहायता उपलब्ध कराए वहीं 1980 के दशक में चुनाव आयोग नगद सरकारी सहायता की जगह सुविधाओं व संसाधनों के जरिए सरकारी सहायता उपलब्ध कराने पर जोर देने लगी। यहाँ पर एक समस्या यह खड़ी हो सकती है कि यदि राज्य द्वारा यह सहायता केवल मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को उपलब्ध करवायी जाती तो कहीं न कहीं इसका नुकसान स्वतंत्र या निर्दलीय उम्मीदवारों को उठाना पड़ता। इसके मद्देनहर यह प्रावधान किया जा सकता है कि राज्य गंभीर व संभावनाओं से परे उम्मीदवार की पहचार करे और फिर उन्हें ऐसी सहायता उपलब्ध करवाये। इससे न केवल अगंभीर किस्म के उम्मीदवारों को हतोत्साहित करते हुए मतों के अनावश्यक विभाजन को रोका जा सकता है वरन् एक से अधिक स्थानो से चुनाव लड़ने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया जा सकता। लेकिन यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या राज्य द्वारा चुनावी खर्च का वहन राजनीति में काले धन की बढ़ती भूमिका व चुनावी खर्च में वृद्धि पर अंकुश लगाने मे समर्थ है। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त अनुभव बहुत उत्साहवर्धक नहीं। सदंर्भ चाहे इटली का हो या स्पेन का। आस्ट्रिया का हो या फिनलैण्ड का। या फिर इजराएल का। इन तमाम संदर्भो में यह देखा गया है कि इसके कारण चुनाव के खर्च घटने के बजाए बढ़ते चले गये। इतना ही नहीं राज्य व सरकार की ओर से वित्ती सहायता पाने के लिए अगंभीर राजनीतिक संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई, जिसने चुनावी फंडिंग को राज्य के लिए वित्तीय बोझ बढ़ाने वाला साबित किया। इसके

आलोक में यह कहा जा सकता है कि चुनाव खर्च से जुड़ी हुई समस्याओं का समाधान सिर्फ राज्यों द्वारा चुनावी खर्चों के वहन के जरिए नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमे ना केवल प्रभावी निगरानी तंत्र विकसित करना होगा जो चुनावी खर्चों की निगरानी कर सके वरन् राजनीतिक दलों के आय व्यय का वार्षिक लेखा जोखा और उसके वार्षिक अंकेक्षण को बाध्यकारी बनाना होगा जैसा जर्मनी में संवैधानिक उपबंधों द्वारा किया गया है।

राजनीति का अपराधीकरण

1980 के दशक में और उसके बाद होने वाले भारतीय चुनावों की प्रवृत्ति पर यदि गौर किया किया जाए तो हम यह पाते हैं कि जैसे-जैसे चुनावों में काले धन की भूमिका बढ़ती गई, वैसे-वैसे न केवल राजनीतिक भ्रष्टाचार की समस्या गंभीर होती चली गई वरन् राजनीति के अपराधीकरण की प्रवृत्ति भी मजबूत हुई। इसके आरंभिक चरण में राजनीतिज्ञों की अपराधियों से सांठगांठ हुई जिसके तहत राजनीतिज्ञो से मिलने वाले संरक्षण के बदले अपराधियों ने राजनीतिज्ञो को चुनाव जीताने में सहयोग करना शुरू किया। इस प्रक्रिया को राजनीति के अपराधिकरण की संज्ञा दी गई। लेकिन आगे चलकर जब इन अपराधियों को यह एहसास हुआ कि ये राजनीतिज्ञ उन्हीं के बदौलत चुनाव जीतते हैं, उनका अपने हित में इस्तेमाल करते है और जरूरत पूरी होने पर उन्हें बीच मझधार में छोड़ देते हैं। तो उन्होने खूद राजनीति में रूचि लेनी शुरू कर दी। इस प्रक्रिया को 'अपराध के राजनीतिकरण' की संज्ञा दी गई और इसके पीछे आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनीतिज्ञों का यह विश्वास काम कर रहा था कि जब से दूसरे को चुनाव जीता सकते हैं तो खुद भी चुनाव जीत कर संसद व विधानमंडल तक पहुंच सकते है। राजनीतिज्ञों व अपराधियों के इसी सांठगांठ के अध्ययन के लिए बोहरा समिति का गठन किया गया था जिसने अपने रिपोर्ट में इस बात की पुष्टि की। आगे चलकर 1997 में तत्कालीन मुख्य आयुक्त जी.कृष्णमूर्ति ने यह रहस्योद्घाटन किया कि 1996 के दौरान होने वाले आम चुनावों में निर्वाचित 4722 विधानसभा सदस्यों में से 700 से अधिक विधान सभा सदस्यों का आपराधिक रिकॉर्ड था और उनके विरुद्ध विभिन्न न्यायालय में उनके विरुद्ध कोई ना कोई मुकदमा चल रहा था। यह प्रवृत्ति अगले एक दशक के दौरान जारी रही। इसकी पुष्टि उम्मीदवारों द्वारा भरे जाने वाले हलफनामे से होती है जो बतलाता है कि 14वीं लोकसभा में 22% से अधिक सदस्य दागदार छविवाले हैं जबकि राज्य विधान सभा सदस्यों में यह प्रतिशत 30-40% के बीच रहा है।

राजनीति के अपराधीकरण को रोकने की दिशा में उठाए कदम

1998 व उसके बाद से ही चुनाव आयोग के द्वारा राजनीति के अपराधीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए, इससे संबंधित चुनाव सुधारों को लागू किए जाने की अनुशंसा की जाती रही है। वर्तमान में जनप्रतिनिधि अधिनियम 1998 की धारा 8 यह प्रावधान करती है कि यदि किसी व्यक्ति को अपराधी करार दिया गया है और उसे उस अपराध के एवज में 2 वर्ष या इससे अधिक के कैद की सजा दी गई है तो वैसे स्थिति में वह व्यक्ति चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य होगा लेकिन यह अयोग्यता तभी लागू होगी जब यह घोषणा अपीली अदालत के द्वारा घोषित की जाएगी। आशय यह कि प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी घोषित किया जाना चुनाव लड़ने से रोके जाने का पर्याप्त कारण नहीं। इसी धारा में यह भी स्पष्ट किया गया कि यदि अपराधी घोषित किए जाने के तारीख में आरोपित व्यक्ति संसद या विधान मण्डल का सदस्य है तो अयोग्यता तत्काल प्रभाव से लागू नहीं होगी। आरोपित व्यक्ति को तीन महीने का समय दिया जाएगा और इस दौरान उसे अपील करने की छूट व जब तक उस अपील पर सुनवायी चल रही हो तब तक धारा 8 के प्रावधान उस पर लागू नहीं होगी।

1997 में चुनाव आयोग ने इलाहाबाद मुम्बई व अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों के आलोक में यह आदेश जारी किया कि अयोग्यता की शुरूआत उसी दिन से होगी जब प्राथमिक अदालत के द्वारा सजा सुनायी जाएगी भले ही उपरी अदालन के द्वारा निर्णय के पुनर्विचार हेतु याचिका को स्वीकार किया जा चुका है और जमानत दी जा चुकी है। इसी के मद्देनहर चुनाव आयोग ने यह भी निर्देश जारी किया कि उम्मीदवारों को अपने अपराधिक रिकॉर्ड के संदर्भ में हलफनामा पेश किया जाएगा। यदि पेश नहीं किया जाता तो Returning Officer उसके नामांकन को रद्द कर सकता है। 1998 में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया कि ऐसे अपराध जिसके लिए 5 साल या इससे अधिक की सजा हो सकती है के लिए आरोपित व्यक्ति पर यदि चार्जशीट दाखिल किया जा चुका है या फिर जिन पर गंभीर अपराधिक मामलों में संलिप्तता का आरोप हो और कोर्ट इस आरोप से प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो तो ऐसे व्यक्ति के चुनावी प्रक्रिया की भागीदारी को प्रतिबन्धित कर सकेगा। 2004 में चुनाव आयोग ने एक बार पुनः केन्द्र सरकार से इस संदर्भ में अनुशंसा करते हुए कहा कि इस प्रावधान के राजनीतिक दुरुपयोग को रोकने के लिए वैसी स्थिति में किसी व्यक्ति को चुनाव लड़ने की छूट होनी चाहिए जिनके विरुद्ध मामला राजनीतिक दुर्भावना से प्रेरित होकर चुनाव के छः महीने पूर्व की अवधि के दौरान दायर किया गया है। अपने रिपोर्ट में चुनाव आयोग ने जम्मू और काश्मीर का हवाला देते हुए कहा कि जहाँ किसी जाँच आयोग द्वारा दोषी पाए जाने पर आरोपित व्यक्ति को चुनाव लड़ने से रोके जाने का प्रावधान है। चुनाव आयोग ने पटना उच्च न्यायालय के उस निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें जेल में बंद लोगो के चुनाव में भाग लेने पर रोक लगायी गई है। और जिस निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी रोक लगा रखी है।

2002 में 'प्रभाकरण वाद' में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि RPA 1951 की धारा 8 के तहत निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को जो संरक्षण प्रदान किया गया है। यह संरक्षण केवल वर्तमान सदन की सदस्यता तक है ना कि भविष्य के लिए। इसके पूर्व 2001 में सर्वोच्च न्यायालय ने जयललिता को अयोग्य घोषित करते हुए कहा कि अयोग्यता प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी घोषित किए जाने के समय से ही लागू होगी। लेकिन 2007 के 'नवजोत सिंह सिद्धु मामले' में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यह अयोग्यता लागू नहीं होगी यदि अपीली अदालत के द्वारा सजा पर रोक लगायी गई हो, आरोपित व्यक्ति को जमानत दी गयी है और अपील की सुनवायी के दौरान अपराधी ठहराए जाने पर भी रोक लगायी गयी है।

चुनाव आयोग ने 2005 में यह आदेश जारी किया कि जिनके खिलाफ गैर जमानती वारण्ट पर 6 महीने या उससे अधिक अमल नहीं हो पाया है। उनके संदर्भ में यह माना जाएगा कि वे अब निश्चित पते पर नहीं रहते। और इसके आधार पर उनका नाम मतदाता सूची से हटा दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में वे ना तो चुनाव लड़ सकते है और ना ही वोट डाल सकते है। इसके पूर्व Association for democracy वाद 2002 और पीपुल्स युनियन फार सिविल लिबर्टी 2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह आदेश दिया कि चुनाव आयोग सभी उम्मीदवारों से उनकी परिसम्पतियों, देनदारियों व शैक्षिक योग्यता के साथ आपराधिक जानकारी दे। इस निर्णय के

आलोक में चुनावी आयोग ने यह निर्णय दिया कि उम्मीदवारों को अपने साथ-साथ पत्नी व आश्रितों के संबंध में भी जानकारियाँ देनी होगी। अगर उम्मीदवारों के द्वारा अपने हलफनामे मे गलत या अधूरी जानकारी दी जाती है। तो वैसी स्थिति में उस उम्मीदवार को 6 महीने की कैद के साथ जुर्माना भी अदा करनी होगी। इस संदर्भ में चुनाव आयोग ने सजा को बढ़ाकर 2 वर्ष करने या जुर्माने की राशि को भी बढ़ाए जाने की अनुशंसा की है ताकि गलत व अधूरी सूचना देने और सूचनाओं के रद्द करने की उम्मीदवारों की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जा सके।

लेकिन मार्च 2007 में संसद की स्थायी समिति ने चुनाव आयोग की उपरोक्त दोनों अनुशंसाओं को इस आधार पर अस्वीकृत किया कि कानून तब तक किसी व्यक्ति को निर्दोष मानता है जब तक कि उसका अपराध सिद्ध ना हो जाए।

गैर सरकारी संगठनो की भूमिका:

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि राजनीति के अपराधीकरण की प्रवृति पर अंकुश लगाने की दिशा में अब तक जितने भी प्रयत्न हुए है, उसमें केन्द्र सरकार की बजाए न्यायालय व चुनाव आयोग की भूमिका कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। केन्द्र सरकार का चुनाव सुधारों के प्रति रूझान सकारात्मक नहीं रहा है और उसने इस संदर्भ में चुनाव आयोग की अनुशंसाओं को दर किनार करने की हर संभव कोशिश की लेकिन न्यायालय के निर्देशों ने चुनाव आयोग को चुनाव सुधार की प्रक्रिया को आगे ले जाने के लिए अधिकृत किया है।

इस संदर्भ में 1978 में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के उस फैसले का उल्लेख गैर जरूरी नहीं होगा। इस फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि चुनाव आयोग को कई तरह की शक्तियों का इस्तेमाल करना आवश्यक है, जिसका जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में उल्लेख नहीं है, जिसके संदर्भ में कानून चुप्पी साधे हुई है।

लेकिन यह पूरी की पूरी चर्चा अधूरी रहेगी यदि गैर सरकारी संगठनों की भूमिका की चर्चा ना की जाए। सर्वोच्च न्यायालय के अधिकांश निर्णय इन्हीं गैर सरकारी संगठनो की याचिका के आलोक में आए है, जिन्हें क्रियान्वित करने के लिए चुनाव आयोग को पहल करनी होगी। 1999 में एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटींग रिफार्म द्वारा दायर याचिका के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग को यह निर्देश दिया कि वह इच्छुक उम्मीदवारों को नामांकन पत्र के साथ यह हलफनामा दायर करने का निर्देश दे जिसमें उसकी आपराधिक रिकॉर्ड, वित्तीय परिसंपत्तियाँ, शैक्षणिक योग्यता व सरकारी संस्थाओं के प्रति देनदारी का स्पष्ट उल्लेख करे।

2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टिज के द्वारा दायर याचिका के आलोक में एक बार फिर से अपने उपरोक्त निर्णय को दोहराया। चुनाव आयोग हलफनामे में प्रस्तुत की गई सूचनाओं का अपनी वेवसाइट पर उपलब्ध करवाया और NGO के माध्यम से इसकी जानकारियाँ आम जनता को उपलब्ध करवायी जायेगी ।

15वीं लोकसभा चुनाव के दौरान नेशनल इलेक्शन वॉच नाम से एक नये NGO का गठन किया गया जिससे राष्ट्रभर में फैले हुए लगभग 1200 से अधिक NGO जुड़े हुए है। इसने एक राष्ट्र व्यापी अभियान छेड़ने का प्रयास किया ताकि राजनीतिक दल किसी अपराधी को प्रत्याशी न बनाए और कोई आपराधिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति चुनाव नहीं जीत पाए।

इसी के आलोक में फरवरी 2009 में Association for democratic Reform और National Election Watch के पहल पर मुम्बई में चुनाव प्रक्रिया पर सम्मेलन का आयोजन किया गया और इस सम्मेलन में राजनीतिक दलों को विश्वास में लेने की कोशिश की गई कि वे ना तो अपराधिक छवि वाले व्यक्ति को पार्टी का उम्मीदवार बनाए और ना ही किसी दागी व्यक्ति के विधायिका में पहुँचने पर उसे मंत्री पद प्रदान करे।

यद्यपि इस व्यापक पहल के प्रति राजनीतिक दलों का रवैया मौखिक आश्वासन भर का रहा लेकिन जनता की प्रतिक्रिया सकारात्मक व उत्साहजनक रही।

इसके परिणामस्वरूप 15 वीं लोकसभा चुनाव में दागी छवि वाले जन प्रतिनिधियों की संख्या में कमी आयी है विशेषकर बिहार व उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अपराधी राजनीतिज्ञों के विरुद्ध जबरदस्त माहौल बना जिसके कारण आपराधिक छवि वाले अधिकांश उम्मीदवारों को हार का सामना करना पड़ा। यह प्रवृत्ति अचानक नहीं देखी गई पिछले कुछ वर्षो के चुनाव में यह रूझान प्रदर्शित होता है। इसी के आलोक में मुम्बई सम्मेलन में तात्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त ने यह स्वीकार किया कि चुनाव आयोग को बाहुबल की भूमिका पर अंकुश लगाने में सफलता तो मिली है पर धनबल की भूमिका पर नहीं।

व्यापक चुनाव सुधार

पिछले दो दशक के दौरान भारत में चुनाव सुधार व्यापक स्तरपर लागू किए गए है, जिसके परिणामस्वरूप स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव का संचालन संभव हो सकता है। इसके मद्देनहर मतदाता पहचानपत्र जारी किए गए, फोटोयुक्त मतदाता सूची को स्वीकार किया गया, चुनावी प्रक्रिया के दौरान विडियों कैमरा की तैनाती की गई। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन प्रणाली को अपनाया गया है। और गंभीर उम्मीदवारों को चुनाव प्रक्रिया से बाहर रखने के लिए जमानत राशि में वृद्धि की गई।

क्षेत्रीय दलों व राष्ट्रीय दलों के रूप में मान्यता को कठोर बनाया गया। समान पर्यवेक्षकों के अतिरिक्त व्यय पर्यवेक्षकों की नियुक्ति की गई। चुनावों में धन बल व बाहुबल की भूमिका को सीमित करने की कोशिश की गई लेकिन इन तमाम कोशिशों के बावजूद फरवरी 2009 में चुनाव प्रक्रिया पर आयोजित सम्मेलन में तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त को यह कहना पड़ा कि चुनाव आयोग को बाहुबल की भूमिका पर अंकुश लगाने में सफलता तो मिली लेकिन धनबल की बढ़ती हुई भूमिका पर प्रभावी अंकुश अब तक संभव नहीं हो पाया। मुख्य चुनाव आयुक्त की यह टिप्पणी इस बात का संकेत देती है कि अब तक चुनाव सुधार की दिशा में जो कदम उठाए गए वे पर्याप्त नहीं है। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो चुनाव आयोग के समक्ष कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ है जिनके परिप्रेक्ष्य में चुनाव सुधार अपेक्षित है:

1. चुनाव प्रक्रिया में काले धन की बढ़ती हुई भूमिका को कैसे सीमित किया जाए।
2. यदि कोई राजनीतिक दल किसी चुनाव क्षेत्र में अपनी पार्टी उम्मीदवार के पक्ष में खर्च करता है तो क्यों नहीं इस खर्च को उम्मीदवार के खर्च में शामिल किया जाए। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय में यह स्पष्ट किया कि किसी उम्मीदवार के चुनाव में पार्टी या उसके समर्थकों के द्वारा किए गए खर्च को भी उम्मीदवार का खर्च माना जाएगा और दोनो खर्चों को जोड़कर ही पूरे खर्च का ब्योरा देना होगा।
3. क्या किसी गंभीर व संदिग्ध मामले में आरोपित व्यक्ति को चुनाव में खड़े होने से रोका जाना चाहिए। या फिर किसी सजायाफ्ता व्यक्ति को चुनाव लड़ने से रोक जाए भले ही उसने अपीली अदालत में प्राथमिक अदालत के विरुद्ध याचिका दायर कर रखी हो।

4. राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को सुनिश्चित करना।
5. राजनीतिक दलों के वार्षिक आय का लेखा जोखा और सरकार के द्वारा उसके वार्षिक लेखा परीक्षण को सुनिश्चित करना।
6. चुनावी खर्च का वहन राज्य के द्वारा आंशिक रूप में किया जाए या पूरी तरह से। साथ ही राज्य द्वारा ऐसे अनुदान नगद रूप में उपलब्ध करवाये जाऐं या फिर सुविधाओं के रूप में।
7. 14 वीं लोकसभा चुनाव के बाद चुनाव आयोग द्वारा इन्हीं प्रश्नों के मद्देनजर व्यापक चुनाव सुधार हेतु अनुशंसा की गई ताकि चुनावों में धनबल व बाहुबल की बढ़ती हुई भूमिका पर अंकुश लगाया जा सके। राजनीति में अपराधियों के प्रवेश को प्रभावी तरीके से रोका जा सके और राजनीतिक भ्रष्टाचार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण संसाधनों के दुरुपयोग की प्रवृत्ति को भी रोका जा सके।

चुनाव आयोग की अनुशंसाओं को निम्न परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है:

1. उम्मीदवारों द्वारा नामांकन दाखिल करते वक्त हलफनामा दायर करने के संदर्भ में:

वर्तमान में उम्मीदवारों को अपने नामांकन पत्र के साथ दो हलफनामा दाखिल करना होता है। एक जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत फार्म 26 के जरिए और दूसरा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2003 में दिए गए निर्णय के आलोक में चुनाव आयोग के निर्देशों के तहत, जिसमें आपराधिक रिकार्ड, शैक्षणिक योग्यता, वित्तीय परिसंपत्ति और सरकारी संस्थाओं के प्रति देनदारी आदि का उल्लेख रहता है।

इस संदर्भ में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया है कि फार्म 26 में संशोधन करते हुए केवल एक ही फार्म में सारी व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही इस फार्म में एक नया कॉलम जोड़ा जाना चाहिए जिसमें करारोपण व व्यवसाय के मद्देनजर उम्मीदवारों की वार्षिक आय का ब्यौरा हो।

चुनाव आयोग ने मतदाताओं की सूचना के अधिकार के मद्देनजर यह सुझाव दिया कि यदि कोई उम्मीदवार हलफनामें मे गलत या अधूरी जानकारी देता है या फिर कॉलम को खाली छोड़ता है वैसी स्थिति में दण्ड के प्रावधान को कठोर बनाते हुए 6 महीने की कैद या जुर्माने की जगह पर 2 वर्ष की कैद व जुर्माना किया जाना चाहिए। इससे गलत या अधूरी सूचना देने की उम्मीदवारों की प्रवृति हतोत्साहित होगी। लेकिन सरकार ने अब तक चुनाव आयोग के सुझाव को स्वीकार नहीं किया।

2. जमानत राशि में वृद्धि का संदर्भ:

चुनाव प्रक्रिया में अगंभीर उम्मीदवारों को शामिल होने व इसके कारण मतों के विभाजन को रोकने के लिए जमानत राशि में वृद्धि अपेक्षित है। अंतिम बार 1996 में सांसदो व विधान सभा सदस्यों के संदर्भ में जमानत राशि को बढ़ाकर क्रमशः 10,000 व 5000 किया गया। चुनाव आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बढ़ाकर इसे क्रमशः 20000 व 10000 करने की अनुशंसा की है। साथ ही चुनाव आयोग ने जमानत राशि की वृद्धि की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन का सुझाव दिया। आयोग का मानना है कि हर चुनाव के पहले अधिनियम में संशोधन व्यवहारिक रूप से संभव नहीं होगा। इसलिए जमानत राशि में वृद्धि का अधिकार चुनाव आयोग को दिया जाना चाहिए।

3. राजनीति के अपराधीकरण का संदर्भ:

इस संदर्भ में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया है कि यदि किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए आरोपित किया गया है जिसके लिए 5 साल या अधिक की सजा हो सकती है और कोर्ट इस आरोप से प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो तो ऐसी स्थिति में चुनाव लड़ने से रोका जाना चाहिए।

चुनाव आयोग का यह भी मानना है कि यदि किसी व्यक्ति को जाँच आयोग के द्वारा दोषी ठहराया गया है ऐसी स्थिति में भी उसे चुनाव लड़ने से रोका जाना चाहिए। चुनाव आयोग ने इस प्रावधान के दुरूपयोग रोकने के लिए भी यह सुझाव दिया कि यदि किसी व्यक्ति के विरूद्ध दुर्भावना से प्रेरित होकर चुनाव के पहले की 6 महीने की अवधि के दौरान कोई मुकदमा दर्ज किया जाता तो वैसी स्थिति में आरोपित व्यक्ति को चुनाव लड़ने की छूट मिलनी चाहिए।

4. किसी उम्मीदवार के एक से अधिक जगहों से चुनाव लड़े जाने का संदर्भ:

वर्तमान में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 33, उपधारा 7 के तहत कोई व्यक्ति दो जगहों से चुनाव लड़ सकता है। चुनाव आयोग ने यह अनुशंसा की है कि किसी उम्मीदवार को एक से अधिक स्थानों से चुनाव लड़ने की अनुमति ना हो। इसके साथ चुनाव आयोग ने यह भी कहा कि यदि वर्तमान प्रावधान जारी रहता है और अगर कोई व्यक्ति दो स्थानों से चुनाव लड़ता है और दोनों जगहों से उसे जीत हासिल होती है तो खाली किए गए क्षेत्र में करवाए जाने वाले उपचुनाव में होने वाले व्यय के मद्देनहर विधानसभा के संदर्भ में 5 लाख व लोकसभा के संदर्भ 10 लाख रुपये जमा करवाया जाना चाहिए।

5. एक्जिट पोल व ओपिनियन पोल का संदर्भ:

चुनाव आयोग ने एक से अधिक चरणों में होने वाले चुनावो के संदर्भ में एक्जिट पोल व ओपिनियन पोल के परिणामों के प्रकाशन पर एक निश्चित अवधि के लिए प्रतिबंध लगाए जाने की अनुशंसा की।

आयोग का यह मानना है कि चुनाव प्रक्रिया की स्वतंत्रता व निष्पक्षता हेतु यह आवश्यक है क्योंकि इसका असर मतदाताओं पर पड़ता है और मतदान आचरण प्रभावित होता है। यह प्रतिबंध पहले चरण के चुनाव की समाप्ति के 48 घण्टे पूर्व से लेकर अंतिम चरण के चुनाव की समाप्ति तक जारी रहना चाहिए।

6. छद्म विज्ञापन का संदर्भ:

वर्तमान में चुनाव आयोग ने छदम विज्ञापन पर रोक लगा रखा है। चुनाव आयोग का यह मानना है कि मुद्रक व प्रकाशन के विवरण के बिना विज्ञापन का प्रकाशन संभव नहीं है। चुनाव आयोग की यह कोशिश है कि समाचार पत्र चुनावी विज्ञापन के संदर्भ में अपनी सूचना चुनाव आयोग को अपलब्ध करवायें। लेकिन ऐसे प्रावधान समाचार पत्र या बाध्यकारी नहीं है।

चुनाव आयोग का यह मानना है कि प्रिंट मिडिया में छद्म विज्ञापन के बढ़ते मामले से निबटने के लिए स्पष्ट प्रावधान किया जाए और RPA 1951 की धारा 127 (1) में संशोधन करते हुए यह प्रावधान किया जाए कि प्रिंट मिडिया में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों के साथ प्रकाशक का नाम व पता भी मौजूद हो।

7. नकारात्मक या तटस्थ मतदान का संदर्भ:

चुनाव आयोग का यह मानना है कि चुनावी व्यवहार अधिनियम 1961 में संशोधन करते हुए मतदाताओं को किसी भी उम्मीदवार को ना चुनने का विकल्प उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। अभी यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित है।

8. RPA 1950 में संशोधन करते हुए यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि मतदाता पंजीकरण अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध जिला निर्वाचन पदाधिकारी के समक्ष अपील किया जा सके।

9. राजनीतिक दलों के आय-व्यय के लेखा जोखा का संदर्भ:

चुनाव आयोग का यह मानना है कि राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे और उसके व्यय की प्रक्रिया में पारदर्शिता अपने आय व्यय का

नियमित लेखा जोखा रखना व आयोग द्वारा अधिकृत एंजेंसी से लेखा परीक्षण राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी है। इस संदर्भ में चुनाव आयोग द्वारा दिए गये सुझाव के मद्देनजर 2003 में यह वैधानिक प्रावधान किया गया कि राजनीतिक दलों को 20000 से अधिक की चंदे की राशि का लेखा जोखा रखना होगा और चंदा देने वालों की रिपोर्ट प्रस्तुत करना होगी। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

इसके मद्देनजर चुनाव आयोग ने सुझाव दिया कि राजनीतिक दल अपने लेखाओं को हर वर्ष सार्वजनिक करे और उसे आम लोगों के सूचनार्थ उपलब्ध करवायें। इसके लिए खातों का रख रखाव व लेखांकन आवश्यक है। यह लेखा परीक्षण सी.ए.जी. द्वारा प्रमाणित या मान्यता प्राप्त किसी भी लेखा फर्म द्वारा हो।

10. सरकार द्वारा प्रयोजित विज्ञापनों का संदर्भ:

सामान्यत: चुनावी आचार संहिता चुनाव की तिथि की घोषणा से प्रभावी होती है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि चुनावी आचार संहिता लागू होने से पूर्व सार्वजनिक खर्च पर मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए विज्ञापन सूचना के रूप में उपलब्ध करवाते है। इसके कारण चुनाव की स्वतंत्रता व निष्पक्षता बाधित होती है। साथ-ही-साथ सत्तारुढ़ दलों को अनुचित लाभ मिलता है।

इसके मद्देनहर चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया कि लोकसभा या विधानसभा के कार्यकाल समाप्त होने के 6 महीने पूर्व से ऐसे विज्ञापनों को प्रतिबंधित किया जाए। यदि लोक सभा व विधानसभा समय से पहले भंग होती है तो यह प्रतिबंध भंग होने की तिथि से प्रभावित होगा। गरीबी व स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं को इससे छूट दी जा सकती है। चुनाव आयोग का यह मानना है कि यह प्रतिबंध सार्वजनिक स्थलों पर लगाए जाने वाले बैनरो व होर्डिगों के संदर्भ में भी लागू हो या फिर यह सुनिश्चित किया जाए कि ऐसे विज्ञापन में किसी दल या व्यक्ति का नाम या फोटोग्राफ नहीं है।

11. टेलीविजन व केबल पर राजनीतिक विज्ञापनों का संदर्भ:

सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग को यह निर्देश दिया कि टेलीविजन व केबल नेटवर्क पर दिए जाने वाले राजनीतिक विज्ञापनों का निरीक्षण चुनाव आयोग द्वारा लिया जाए।

इस संदर्भ में चुनाव आयोग का यह सुझाव है कि केबल टीवी कानून 1994 में संशोधन किया जाए ताकि उपयुक्त विज्ञापन संहिता और मौनिटरिंग मैकेनिज्म को विकसित किया जाए।

12. चुनाव आयोग का संदर्भ:

चुनाव आयोग का यह मानना है कि आयोग की स्वतंत्रता व निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए अन्य चुनाव आयुक्तों की बर्खास्तगी प्रक्रिया को भी मुख्य चुनाव आयुक्त की बर्खास्तगी प्रक्रिया के समान बनाया जाए।

साथ ही चुनाव आयुक्तों एवं चुनाव आयोग से जुड़े कर्मचारियों की नियुक्ति व पदोन्नती प्रक्रिया में कार्यपालिका के हस्तक्षेप को सीमित किया जाए। साथ ही चुनाव आयोग ने अपने संवैधानिक दायित्वों के स्वतंत्र रूप से निर्वहन हेतु चुनाव आयुक्त के स्वतंत्र सचिवालय की माँग की। 1990 में गठित गोस्वामी समिति भी इसे सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकार कर चुकी थी लेकिन इस दिशा में सार्थक पहल अब भी अपेक्षित है।

13. चुनाव आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि आयोग की स्वतंत्रता व निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए चुनाव आयोग से संबंधित व्यय को संचित निधि पर भारित घोषित किया जाए।

14. चुनावी अधिकारियों के स्थानान्तरण का संदर्भ:

वर्तमान में चुनाव की तिथि की घोषणा के साथ ही चुनाव अधिकारियों के सरकार द्वारा स्थानान्तरण पर रोक लग जाती है। इस संदर्भ में 1998 में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया था कि इस रोक को चुनाव के 6 माह पूर्व से ही प्रभावी बनाया जाए। समय पूर्व लोकसभा या राज्यसभा भंग होने की स्थिति में इस रोक की भंग होने की तिथि से प्रभावी बनायी जाए।

15. वर्तमान में RPA 1951 की धारा 123 (उपधारा 7) के तहत कुछ विशेष अधिकारियों को ही शामिल किया गया हैं चुनाव आयोग की अधिकारियों के इस समूह के कार्यवाही के खिलाफ अधिकार है। चुनाव प्रक्रिया में शामिल सभी अधिकारियों के खिलाफ नहीं।

चुनाव आयोग का मानना है कि इस समह में कुछ विशेष अधिकारियों को शामिल करने की बजाए चुनाव के संचालन में नियुक्त सभी अधिकारियों को शामिल किया जाए।

चुनाव आयोग की लम्बित अनुशंसाएँ:

1. दलबदल कानून के संदर्भ (अयोग्यता का प्रश्न):

वर्तमान में दलबदल के प्रावधानों के तहत यदि अगर संसद या विधानमंडल के किसी सदस्य की निर्हरता का प्रश्न उठता है तो वैसे स्थिति में सभा के अध्यक्ष या सभापति का निर्णय अंतिम होता है। इस संदर्भ में यह सुझाव दिया गया है कि ऐसे मामले को भी राष्ट्रपति व राज्यपाल को ही सौंपा जाना चाहिए जो चुनाव आयोग की राय के अनुसार काम करेंगे।

2. भारतीय निर्वाचन आयोग और राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा एक समान मतदाता सूची का प्रयोग:

वर्तमान में भारतीय निर्वाचन आयोग व राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा अलग-अलग मतदाता सूची और पृथक चुनावी उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता है। इसके कारण मतदाता सूची के पुनर्निरीक्षण की समीक्षा न केवल जटिल होती है वरन् पुनर्निरीक्षण के कार्य को बार-बार दोहराया जाता है।

1999 में मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने अपने पत्र में प्रधानमंत्री को एक ही मतदाता सूची और बेलेट बाक्स जैसे मतदान उपकरण के इस्तेमाल की अनुशंसा की जिसको लोकसभा, राज्यसभा व स्थानीय संस्थाओं के चुनाव में प्रयोग किया जाएगा। इससे न केवल मतदाता सूची के पुनर्निरीक्षण से जुड़ी समस्याएं कम होगी वरन् आर्थिक बचत भी होगी।

3. भ्रष्ट आचरण के लिए दोषी पाए जाने पर अयोग्यता की प्रक्रिया को आसान बनाना:

वर्तमान में यदि किसी उम्मीदवार को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत भ्रष्ट आचरण का दोषी पाया जाता है तो वैसी स्थिति में न केवल उसकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है वरन् अगले 6 वर्षों के लिए उसे चुनाव लड़ने पर रोक भी लगाई जा सकती है। इस संदर्भ में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया है कि अयोग्यता व दण्ड संबंधी प्रावधानों को लोचशील बनाया जाए। साथ ही इसे भ्रष्ट आचरण के स्वरूप और व्यवहार की गंभीरता के मद्देनजर अपेक्षाकृत

4. उम्मीदवारी हेतु प्रस्तावितों की समस्या का समाधान:

वर्तमान में किसी उम्मीदवार द्वारा नामांकन पत्र दाखिल करने के लिए आवश्यक प्रस्तावकों की संख्या की दृष्टि से अलग-अलग प्रावधान किए गये हैं। किसी मान्यता प्राप्त दल के उम्मीदवार के लिए जहाँ एक प्रस्तावक की जरूरत होती है। वहीं निर्दलीय उम्मीदवारों के लिए 10 प्रस्तावकों की जरूरत। इस संदर्भ में चुनाव आयोग ने यह सुझाव दिया कि इसे द्वैत को समाप्त करते हुए सभी श्रेणी के उम्मीदवारो हेतु 10 प्रस्तावकों की संख्या को अनिवार्य बनाया गया।

5. वर्तमान में RPA 1950 और RPA 1951 के प्रावधानों के तहत चुनाव संबंधी नियम व कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार को लेकिन चुनाव आयोग ने सुझाव दिया है कि जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन करते हुए यह

अधिकारिता चुनाव आयोग को प्रदान कर दी जानी चाहिए।

6. राजनीतिक दलों के पंजीकरण व अपंजीकरण का संदर्भ:

वर्तमान में राजनीतिक दलों के पंजीकरण का दायित्व चुनाव आयोगों को सौंपा गया है। लेकिन उसे अपंजीकरण का अधिकार नहीं है, जिसके कारण पंजीकृत राजनीतिक दलों की संख्या 1100 के आसपास पहुँच गई है। इन पंजीकृत राजनीतिक दलों में महज कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं जो चुनावी प्रक्रिया को लेकर गंभीर है।

इसी के मद्देनजर 15 वीं लोकसभा चुनाव के बाद मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने केन्द्र सरकार को यह सूझाव दिया कि चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के विनियमन और अंगभीर राजनीतिक दलों के पंजीकरण को रद्द करने की अनुमति दी जाए। इसके लिए RPA 1951 की धारा 29 (।) में अपेक्षित संशोधन किए जाए।

अनिवार्य मतदान का संदर्भ:

पिछले कुछ समय से भारत में मतदान के निम्न % के मद्देनहर यह सुझाव दिया जा रहा है कि भारतीय नागरिकों के लिए भी अनिर्वाय मतदान की संकल्पना को लागू किया जाए। इसके पीछे तर्क यह है कि इससे मतदान का % बढ़ेगा और संसदीय प्रणाली में लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की संकल्पना कहीं अधिक मजबूत होगी। इसके पीछे एक तर्क यह भी दिया जाता है कि इससे राजनीतिक दलों द्वारा जाति, धर्म और संप्रदाय आधारित संकीर्ण राजनीति पर भी अंकुश लगेगा क्योंकि मतदाताओं की बहुसंख्या उस विशेष जाति के आधार पर बनने वाले समीकरणों को ध्वस्त करने में सहायक होगा। साथ ही इससे राजनीति व राजनीतिक दलों को जनता के प्रति संवेदनशील बनाने में भी मदद मिलेगी। इस संदर्भ में एक याचिका सर्वोच्च न्यायालय में भी दायर की गई थी, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि महज निर्देश जारी करके मतदान केन्द्रों तक मतदाता के पहुँच को सुनिश्चित नहीं किया जाता। इसके लिए आवश्यक है मतदाताओं को जागरूक किया जाना। इस याचिका में सर्वोच्च न्यायालये से यह माँग की गई थी कि जो मतदाता अपने मताधिकार का इस्तेमाल नहीं करते, उनकी बिजली व पानी के कनेक्शन काटने के निर्देश दिए जाने चाहिए।

वर्तमान मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने भी एक साक्षात्कार में इसका विरोध करते हुए कहा कि अनिवार्य मतदान का फैसला भारतीय संदर्भ में व्यवहारिक नहीं होगा। यह उन देशों में लागू हो सकता है जहाँ मतदान का प्रतिशत अधिक है। उन्होंने यह प्रश्न किया कि अब तक भारत में 1984 में सबसे अधिक 61% मतदाताओं ने अपने मत का प्रयोग किया। वैसी स्थिति में यदि 40% या इससे अधिक मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं करते उन्हें किस रूप में दण्डित करेंगे

दूसरी बात यह कि विश्व के जिन 30 देशो में अनिवार्य मतदान का प्रावधान किया गया वहाँ न केवल मतदान का प्रतिशत अधिक है वरन् जनसंखया का आकार भी छोटा है।साथ-ही-साथ राजनीतिक व सामान्य जागरूकता भी कहीं अधिक है। उन देशों से भारत की स्थिति की तुलना नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त अनिवार्य मतदान कई प्रकार की जटिलताओं को भी जन्म दे सकता हैं अगर कोई व्यक्ति शारिरीक अक्षमता या बिमारी के कारण अपने मताधिकार का इस्तेमाल नहीं कर पाता तो वैसी स्थिति में उसके साथ क्या होगा। यदि उसे मेडिकल रिपोर्ट को आधार बनाकर माफी दी जाती है तो इसके लिए चुनाव आयोग को मेडिकल विशेषज्ञों की एक अलग टीम बनानी होगी।

यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि भारत में कम मतदान का कारण क्या है। क्या इसे मतदाताओं में जागरूकता के अभाव से जोड़कर देखा जा सकता है। अगर हाँ तो सम्पन्न व शिक्षित वर्ग के लोग चुनावी प्रक्रिया के प्रति उदासीन क्यों है। क्यों मुम्बई जैसे शहरो में मतदान का प्रतिशत 42% के आसपास रहता है। क्यों समाज का सवर्ण समूह व उससे जुड़ी महिलाएं वोट डालने नहीं जाती। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम यह कह सकते हैं कि कहीं न कहीं विकल्पहीनता की स्थिति और राजनीतिक दलों से मोहभंग के साथ-साथ समाज की यथार्थपरक समस्याओं के समाधान में राजनीति की असमर्थता व असंवेदनशीलता ने भी मतदाताओं को चुनाव प्रक्रिया के प्रति उदासीन बनाया है। यदि भारतीय मतदाताओं को सकारात्मक मतदान का विकल्प उपलब्ध कराया जाता है तो शायद मतदाताओं को अपनी भावनाओं का इजहार करने में सुविधा होगी। इससे चुनाव प्रक्रिया के प्रति मतदाताओं की उदासीनता भी खत्म हो जाएगी, साथ ही मतदाता सूची में पंजीकरण से लेकर मतदान की प्रक्रिया तक को हमें वोटर फ्रैंडली बनाना होगा। साथ ही ऐसा विकल्प भी उपलब्ध कराना होगा जिससे मतदाता अपने क्षेत्र से बाहर रहने के बावजूद अपने मताधिकार का इस्तेमाल कर सके।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन विवाद

लोकतंत्र का लोकयंत्र भी अब विवाद से परे नहीं रहा है। 15 वीं लोकसभा चुनाव संपन्न होने के ठीक बाद एक सेवानिवृत प्रशासनिक अधिकारी उमेश सहगल ने EVM प्रणाली पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए समस्त चुनाव प्रक्रिया की स्वतंत्रता व निष्पक्षता को ही प्रश्न के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया।

उनका कहना है कि भारत में प्रयुक्त EVM की प्रोग्रामिंग कुछ इस तरह से है कि गुप्त कोड भरने की स्थिति में हर पाँचवा वोट किसी प्रत्याशी विशेष के पक्ष में दर्ज कराना संभव है। उनका यह भी आरोप है कि इन EVMs की Software की आयोग द्वारा कभी जाँच नहीं करवायी गई।

आपूर्तिकर्ता कम्पनी द्वारा जारी सर्टिफिकेट पर ही विश्वास कर लिया जाता है। उन्होंने यह माँग की इसकी पुष्टि के लिए सभी EVM की जाँच के बजाए केवल उन EVM की जाँच की जा सकती है जिन पर किसी प्रत्याशी विशेष को कुल मतों का 75% प्राप्त हुआ है या फिर जिन क्षेत्रों में जीत हार का अंतर 15000 से कम है। सहगल ने चुनाव आयोग से सूचना के अधिकार के तहत Software Certification प्रक्रिया पर भी जानकारी माँगी है।

मुख्य चुनाव आयुक्त ने सहगल के शिकायत का अध्ययन करने की जिम्मेदारी चुनाव आयुक्त आर. बालकृष्णन को सौंपी है और अगर सहगल अपने दावे को प्रमाणित करने की स्थिति में होते तो इस मामले को डॉ. इन्द्रेसेन की अगुवाई वाले उस समिति को सौंपा जाएगा जिसने इसका अनुमोदन किया था। इससे पूर्व ऐसे ही मामले में सर्वोच्च न्यायालय चुनाव आयोग को क्लीन चिट दे चुका है।

सहगल के इस दावे के बाद EVM में गडबड़ी का मुद्दा एक राजनीतिक मुद्दा बनता दिख रहा है। कई राजनीतिक दलों द्वारा EVM प्रणाली का विरोध किया जा रहा है। और उसके लिए ना केवल EVM में होने वाली गड़बड़ियों का हवाला दिया जा रहा है वरन् यह भी कहा जा रहा है कि इसमें मतदान की गोपनीयता नहीं बनी रह पाती।

इसी के आलोक में यह भी माँग की जा रही है, कि जब तक चुनाव आयोग EVM मशीन को फुलप्रुफ साबित नहीं कर देता तब तक मतदान प्रक्रिया में EVM के जगह पर मतदान पत्रों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जर्मनी, नीदरलैंड व अमेरिका के 11 राज्यों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।